ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, PP-379-384,YEAR-2015

प्रकृति और सौन्दर्य के कवि : कालिदास

❑ डॉ0 चन्द्रेश कुमार पाण्डेय

सार – *रचना जगत में सौन्दर्य सृष्टि का विलक्षण प्रभाव है। कल्पनाशक्ति व प्रतिभा के प्रभाव से रचनाकार अपनी रचनाओं में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करता है। संसार की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य का अन्वेषण करता है। कहते हैं – संसार उसे जिस रूप में रुचिकर लगता है, इसकी उस रूप में कल्पना कर लेता है – "यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिकल्प्यते।" रचना जगत की सौन्दर्य सृष्टि में महाकवि कालिदास का अन्यतम स्थान है। जिस प्रकार प्रकृति अपने सहज रूप में वैविध्यमयी है, सहज है, सुन्दर है, पूर्ण है; उसी प्रकार कालिदास की रचनाओं में सौन्दर्य, पवित्रता, मादकता, छलहीनता, उदारता बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य श्रृंगार आदि सभी उदात्त मानवता के तत्त्व एक साथ विद्यमान हैं।*

मानव जगत और प्रकृति सौन्दर्य के दो क्षेत्र हैं। मानव जगत के अन्तर्गत स्त्री सौन्दर्य और पुरुष सौन्दर्य आते हैं। विदग्ध कवियों की दृष्टि स्त्री शरीर सौन्दर्य पर अधिक रमी है। स्त्री सौन्दर्य को हम दो रूपों में देखते हैं– एक हैं स्थूल सौन्दर्य, जिसे बाह्य सौन्दर्य भी कहते हैं और दूसरा है सूक्ष्म, इसे आन्तरिक सौन्दर्य या शील–सौन्दर्य कहते हैं। पूर्ण सौन्दर्य की सृष्टि इन्हीं दोनों से होती है। सांसारिक क्रिया–कलापों और परिस्थितियों के वषीभूत होकर मानव चित्त अशान्त–सा रहता है। जब वह सुन्दर वस्तुओं को देखता है, उस क्षण उसके ह्रदय में सरसता एवं कोमलता का संचार होने लगता है। इस अवस्था में विकसित पुष्प या कमनीय कोमलांगी के दर्शन मात्र से चित्त की मृदुता के कारण सौन्दर्य का दर्शन होने लगता है।

प्रकृति में विद्यमान सुन्दर वस्तुओं के प्रति वैदिक ऋषि सदा आकृष्ट रहे हैं। सौन्दर्य के प्रति ऋषि रीझ पड़ता है। उशा के रमणीय रूप पर जब ऋषि की दृष्टि पड़ती है तो एक मानवी के रूप में उसे देखकर प्रसन्नता से बोल पड़ता है– "हे प्रकाशवती उषा, तुम कमनीय कन्या की भाँति अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर अभिमत फलदाता सूर्य के निकट जाती हो और उसके सन्मुख स्मितवदना युवती की भाँति अपने वक्षस्थल को आवरण रहित करती हुई अपने आपको प्रकाशित करती हो।"[1] कवि सौन्दर्य के भीतर आन्तरिक सौन्दर्य का भी अनुभव करता है। उषा केवल बाह्य सौन्दर्य की प्रतिमा न होकर आन्तरिक सौन्दर्य की प्रतिमा भी बन गयी है।

सुन्दर रूप का प्रभाव है – मोह उत्पन्न करना (प्राणी को मुग्ध करना) और इन्द्रियों के व्यापारों को अभिभूत करके चक्षुरिन्द्रिय व्यापार को जागरूक करना। इस क्रिया में तीन गुणकारी प्रतिनिधि शब्द हैं– माधुर्य, लावण्य और आनन्द। 'माधुर्य' नायिका का अयत्नज अलंकार कहा गया है। यह देहयष्टि के सौन्दर्य, मानसिक दशा तथा शब्दगुण तीनों से सम्बन्ध रखता है। इस अर्थ में कालिदास का एक श्लोक द्रष्टव्य है–

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।"[2]

सेवार से घिरा हुआ भी कमल सुन्दर लगता है, काला कलंक भी चन्द्रमा की शोभा को बढ़ाता है। यह कृशांगी वल्कल वस्त्रों से अति सुन्दर प्रतीत होती है; क्योंकि सुन्दर आकृतियों के लिए क्या वस्तु अलंकार नहीं होती है?

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार, उनवल, गोरखपुर (उ0प्र0) भारत

सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम् – अविमारक।

ऐसी कौन सी वस्तु है जो मधुर आकृति को भूषित करने का कार्य नहीं करती। यह गुण चित्त को क्षुब्ध करने वाले अवसर प्राप्त होने पर भी चित्त में उद्वेग उत्पन्न नहीं करता।

दूसरा प्रतिनिधि शब्द है– 'लावण्य'। यह अवयवों के संस्थान के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तथा अवयवों से व्यतिरिक्त पृथक होने वाला अन्य धर्म ही है। लावण्य आँख में, मुख में या केश में नहीं रहता। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वनि को परिभाषित करते हुए इसे व्यक्त किया है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत् यत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।। (ध्वन्यालोक 1/4)

महाकवियों की वाणी में प्रतीयमान व्यंग्य अर्थ वाच्य अर्थ से भिन्न उसी प्रकार होता है जैसे रमणीय अंग वाली ललनाओं में दिखाई देने वाला लावण्य सम्पूर्ण अवयवों से पृथक रूप में सहृदय नेत्रों को आनन्द देने वाला अमृत रूप तत्त्व ही है। वह अंग में अपनी सत्ता नहीं रखता, बल्कि उससे पृथक् होता है और सहृदयों के हृदय को आनन्दित करता है। यह अंग विशेष में नहीं रहता, परन्तु अंगों के सुन्दर संस्थान के द्वारा अभिव्यक्त किया गया सद्यःअनुभूयमान विशेष धर्म है। मोतियों की शोभा की तरलता–चंचलता के समान अंगों की शोभा में जो तरलता दिखाई देती है वह लावण्य है। शाकुन्तल में दुष्यन्त कहता है–

मानषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।।
(शाकुन्तल 1/26)

मनुष्य जाति की स्त्रियों में इस सौन्दर्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? कान्ति से देदीप्यमान तेज (विद्युत) भूतल से उत्पन्न नहीं हो सकता। चंचल चमक वाली बिजली पृथ्वी तल से नहीं निकल सकती। तीसरा शब्द 'आनन्द' है जिसे आध्यात्मिक जगत परब्रह्म मानता है। यह अनुभूति आनन्द की पूर्णता है। इसमें कामना का अवसान है तथा दुःख, शोक और पीड़ा का आत्यन्तिक निषेध है; जैसे स्नेहमयी प्रिया के द्वारा सम्यक् संयुक्त पुरुष आनन्द की पराकाष्ठा का अनुभव करता है वह न अपने कुछ भीतर जानता है और न कुछ बाहर जानता है। यह लौकिक व आनन्दानुभूति ब्रह्मानन्द का एक उपमान है।

कालिदास के सौन्दर्य का बाह्य पक्ष बहुत ही आकर्शक है। शाकुन्तल में यह रूप उल्लेख योग्य है – आश्रम में दुष्यन्त को अन्तःपुर की रानियों में भी दुर्लभ सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। शकुन्तला को उसकी सखियों के साथ देखकर कह उठता है– 'अहो मधुरमासां दर्शनम्।' महाकवि का कल्पनालोक अनुपम है जो उनके सौन्दर्य संसार में चार चाँद लगा देता है। कालिदास की कविता कामिनी सहज स्वाभाविक कल्पना से उद्भाषित है और यह प्रमाणित करती है कि कवि का कल्पना पर पूरा अधिकार है। विदूषक से वार्तालाप के प्रसंग में दुष्यन्त शकुन्तला को ब्रह्मा के द्वारा बनायी गयी विलक्षण स्त्री–रत्न मानता है– "विधाता की सर्वशक्तिमत्ता और उसके शरीर पर विचार करके मुझे वह विधाता के द्वारा चित्र बनाकर उसमें जीवन–संचार करके, मन से ही मानों सौन्दर्य समूह से बनायी गयी विलक्षण स्त्री–रत्न प्रतीत होती है।"[3] परमात्मा ने मानो सर्वोत्तम सुन्दरी का चित्र बनाया, उस चित्र में प्राण का संचार किया और हाथ से नहीं अपितु मन से सौन्दर्य समूह के द्वारा उसको बनाया है; क्योंकि हाथ से बनाने पर उतनी सुन्दरता नहीं आ सकती थी। स्त्री–रत्न लक्ष्मी, तिलोत्तमा या उर्वषी को माना जा सकता है। कवि की दृष्टि में यह दूसरी स्त्री–रत्न है।

महाकवि 'विक्रमोर्वशीयम्' की उर्वशी को वेदाभ्यास जड़ होने के कारण विधाता की रचना ही नहीं स्वीकारता – उर्वशी की सौन्दर्यशालिनी मूर्ति के निर्माण में अलौकिक तत्त्वों का समावेश किया गया है जिससे पुरुरवा के हृदय में उसके सौन्दर्य की प्रतिक्रिया से तीव्र अनुभूति निम्न श्लोक में प्रस्तुत वितर्कों में उपस्थित होती है। उर्वशी के रूप में सौन्दर्य की कवि हृदय जनित कल्पना अपनी सहज रमणीयता के साथ सहृदय के हृदय में उद्भासित हो उठती है–

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः।

शृंगारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।।

वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्त कौतूहलो।

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।

इसकी उत्पत्ति के समय कान्ति प्रदान करने वाला चन्द्रमा या शृंगार में ही रस लेने वाला कामदेव या स्वयं पुष्पों का आकर रूप वसन्त ही तो प्रजापति नहीं बन गया था? अर्थात् अवश्य बना होगा; क्योंकि अनासक्त वेदाभ्यास से जड़ पुराना विधाता इस रूप को बना ही नहीं सकता।

बाह्य सौन्दर्य वर्णन में कवि का मन अधिक रमा है। इनका प्रधान रस शृंगार होने के कारण प्रायः सौन्दर्य मांसल और वासनाजन्य है। नारी सौन्दर्य वर्णन कवियों को अत्यन्त प्रिय रहा है। वे रमणी के रूपराशि वर्णन में नख–शिख वर्णन तक सारी सामग्री समाप्त करने में तनिक भी नहीं हिचकते। मौलिक कल्पना के सहारे स्त्री–सौन्दर्य वर्णन में कालिदास निपुण हैं। शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन दर्शनीय है– "कन्धे पर जिसके छोटी गाँठ लगायी हुई है, जो दोनों पयोधरों के विस्तार को ढके हुए है, ऐसे वल्कल वस्त्र से इसका यह मनोहर षरीर, पीले पत्ते के मध्य भाग से ढके हुए फूल की तरह, अपनी शोभा को धारण नहीं कर रहा है।"[4] 'कुमारसम्भव' में पार्वती के स्तनों का वर्णन करते हुए कवि कहता है– "दोनों स्तन एक दूसरे को दबाते हुए इस प्रकार बढ़े हुए थे कि श्याम मुख वाले दोनों स्तनों के मध्य मृणाल सूत्र रखने का स्थान नहीं रहा"[5] 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' में इसके अनेकानेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। रघुवंश में सुदक्षिणा की गर्भावस्था का वर्णन देखें– "कुछ दिन व्यतीत होने पर अत्यन्त मोटे और चारों तरफ से श्याम मुख वाले स्तनों की घुंटियाँ काली पड़ गयीं इससे रानी के स्तन इतने सुन्दर लगने लगे जिनकी शोभा के सामने वे कमल की कलियाँ भी फीकी पड़ गयीं जिन पर भौंरे बैठे हों।"[6] कालिदास नायिका के अंग सौन्दर्य चित्रण में उपमाओं का प्रत्यक्ष आश्रय लेते हैं। इनकी उपमाएँ मूर्त से मूर्त का ही स्पष्टीकरण करने वाली हैं। कहीं–कहीं उन्होंने द्रव्य की उपमा गुण से भी की है। महाकवि के भाव अपने आप में सहज एवं स्वाभाविक हैं। उसमें कृत्रिमता के लिए लेशमात्र भी अवकाश नहीं है। विवेकयुक्त प्रेम ही सौन्दर्य का आधार होता है। सुन्दरता से आकृष्ट होकर भी दुष्यन्त विवेक का आँचल नहीं छोड़ता और ऋषि (कण्व) कन्या के प्रति अपने आकर्षण का विवेकसम्मत कारण खोज निकालता है। इसी कारण से वह अपने क्षत्रियोचित आकर्षण को योग्य ठहराते हुए कह उठता है– "सतां हि सन्देह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः।" सन्देह की दशा में सज्जनों का अन्तःकरण ही प्रमाण होता है। एक दूसरा उदाहरण भी द्रष्टव्य है– शकुन्तला आश्रम कुटी की ओर लौट रही है परन्तु प्रेम के कारण दुष्यन्त को फिर देखना चाहती है–

दर्भांकुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्।। (शाकुन्तल 2–12)

शकुन्तला सखियों के साथ कुछ दूर जाकर रुक जाती है। वह बहाना करने लगती है कि कुश के छोटे–छोटे अंकुर पैरों में चुभ रहे हैं। जरा धीरे चलूँगी, थोड़ा आराम कर लूँ। उसका वल्कल पेड़ की डाल से उलझा हुआ नहीं था फिर भी बहाना करके उसे छुड़ा रही है और इसी बहाने दुष्यन्त को देख रही है। यह नया प्रेम कैसा मधुर होता है।

सौन्दर्य का दूसरा क्षेत्र प्रकृति है। कालिदास की दृष्टि में प्रकृति अचेतन पदार्थों का संग्रह नहीं है बल्कि सहानुभूति के स्पन्दन से युक्त है। प्रकृति मानव के साथ मैत्री के धागे से इस प्रकार बँधी रहती है कि वह उसके सुख को अपना सुख और उसके दुःख को अपना दुःख समझती है। वह जीवनदायिनी

शक्ति से परिपूर्ण सुन्दर भावनाओं के साथ प्राणियों के प्रति सहानुभूति से स्पन्दित होती है। प्रकृति का मानवीय वृत्तियों में मिला हुआ चित्रण कवि की अद्वितीय प्रतिभा का प्रकाशन है। "पाश्चात्य कवियों के प्रकृति वर्णन नग्न होते हैं – बिना किसी आवरण के प्रकृति अपने असली रूप में आकर उपस्थित होती है; परन्तु भारतीय कवियों का प्रकृति वर्णन अलंकृत है – ये महाकवि प्रकृति को सुन्दर मुग्धकारी आभूषणों से सुसज्जित कर पाठकों के सामने लाते हैं, महाकवि कालिदास इस अलंकृत वर्णन शैली में निपुण हैं।"[7] इस प्रसंग में दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के विषय में कही गयी उक्ति प्रासंगिक है–

"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुमिव लोभनीयं यौवनमंगंषु सन्नद्धम्।। (शाकुन्तल 1–21)

शकुन्तला के अधर नये पत्ते के तुल्य लाल हैं। (इसकी) दोनों भुजाएँ कोमल शाखाओं के सदृश हैं। (इसके) अंगों में फूल की तरह मनोहर यौवन व्याप्त है। इस श्लोक में शकुन्तला की लता से तुलना की गयी है– उसके अधर नव–पल्लव तुल्य हैं, दोनों बाहु पतली शाखाओं के तुल्य हैं तथा अंगों में फूलों सा मनोहर यौवन का सौन्दर्य है।

कालिदास के प्रकृति चित्रण में निरीक्षण की सूक्ष्मता, नवीनता, हृदय की सरलता एवं कल्पना की कमनीयता पायी जाती है। कवि ने प्रकृति को मूक, चेतनाहीन न मानकर उसका मानवीकरण किया है। प्रकृति जैसे सहज मानवीय संवेदनाओं से अनुप्राणित होकर चैतन्य हो उठती है। मानवीकरण के परिणामस्वरूप उसमें सुख–दुःख और संवेदनशीलता का भाव भरा हुआ है। कवि अधिकतः रस–स्नात प्रकृति के उपकरणों, भ्रमरों, मृगों, लताओं और कलरव–निरत विहगों का कलनाद सुनने में व्यस्त रहते हैं।

कालिदास ने शकुन्तला को निसर्ग कन्या के रूप में चित्रित किया है। वह तपोवन के वृक्ष, लता, पशु–पक्षियों के समान प्रकृति से उत्पन्न सुकोमल लता की भाँा,है। प्रत्येक लता उसे अपनी बहिन समझती है और वह समूचे आश्रम को अपना भाई मानती है। जिस वन–ज्योत्स्ना को लता भगिनी के रूप में स्वीकार किया था और जिसका विवाह उसने नवीन सहकार वृक्ष से किया था, वह उसके उपकार से गदगद जान पड़ती है। लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि इसी वन–ज्योत्स्ना ने भँवरे को छोड़कर उसके लिए अनुकूल वर ढूँढ़ने का उपक्रम किया था। मृगशिशु उसके हृदय की बात जानता है और किसी अज्ञात सहजात वृत्ति के द्वारा भविश्य की हृदयविदारक घटना का आभास पा जाता है। वह दुष्यन्त के द्वारा दिया गया जल नहीं पीता और विदाई के समय पीछे से आकर उसका वस्त्र खींचने लगता है; मानो भावी घटना को जानकर षकुन्तला को पतिगृह जाने से रोकना चाहता है।

शाकुन्तल के चौथे अंक में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उसे पुष्पमालाओं से अलंकृत करना, कोयल की कूक द्वारा जाने की अनुमति देना, विरह के आँसू के रूप में पीले (पुराने) पत्तों का गिरना, मृगियों का उदास अवस्था में रहना और घास खाना छोड़ देना प्रकृति में मानवीय भावों की अनूठी अभिव्यंजना है। पावन आश्रम का दृश्य देखने योग्य है–

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतय शब्दं सहन्ते मृगा

स्ता`याŸाारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखांकिताः।। (शाकुन्तल 1–14)

तोतों के बच्चे वृक्ष के कोटर में रहते हैं, तोते नीवार लाकर बच्चों को देते हैं। बच्चों को नीवार देते समय शीघ्रता के कारण नीवार का कुछ भाग बच्चे पाते हैं और कुछ जमीन पर गिर जाते हैं। इस प्रकार शुकयुक्त कोटरों के अग्रभाग से नीवार भूमि पर गिरे हुए हैं। तपस्वी लोग इंगुदी फल से तेल निकालकर उपयोग में लाते हैं। इन फलों को तोड़ने के कारण पत्थर अत्यन्त चिकने हो जाते हैं। आश्रम की सीमा के

अन्दर होने के कारण वे मृग निर्भीक थे और रथ को देखकर निर्भय थे। तालाब से नहाकर जब तपस्वी लौटते थे उस समय वल्कलों से जल की बूँदें टपकती जाती थीं, उनसे मार्ग में चिह्न पड़ गये थे। ऐसा आश्रम था।

प्राचीन आश्रम आध्यात्मिक पवित्रता एवं वैभव के साथ उपस्थित होता है तथा जन–कोलाहल से दूर शान्तिमय वातावरण में जीवनयापन के लिए मानव मात्र को गुहार लगाता है। ऐसी ही प्राकृतिक मनोहरता 'रघुवंश' के इस दृश्य में भी दीख पड़ती है–

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयो चितैर्मृगैः।।
(रघुवंश 1–50)

ग्रीष्म के बीत जाने पर ऋषियों ने नीवार काटकर इन आँगनों में इकट्ठा किया है इनमें बैठकर मृग जुगाली कर रहे हैं – जंगली जीवों के विश्वास और ऋषियों के विश्व–प्रेम का क्या कहना!

अन्तःप्रकृति एवं बाह्यप्रकृति की रुचिर, सामंजस्यपूर्ण उद्भावना महाकवि की प्रत्येक रचना में प्राप्त होती है। 'मेघदूत' में तो ऐसे वर्णन भरे पड़े हैं और उनका मन प्रकृति के कोमल पक्ष की ओर ही अधिक रमता है। मनोभावों का विशद् वर्णन, प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति के साथ तादात्म्य की स्थिति इनके वर्णन की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार देखते हैं कि कालिदास सौन्दर्य–वर्णन एवं प्रकृति–वर्णन में सिद्धहस्त हैं। उनका सौन्दर्य बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं करता है। उनके लिए अकृत्रिम सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है। उनका सौन्दर्य निर्दोष है। प्राकृतिक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है। वे सौन्दर्य को शील और सदाचार का साधन मानते हैं। कवि का प्रकृति–वर्णन अनुपम है; यहाँ प्रकृति को मानव से जितना प्यार है, मानव का प्रकृति से उतना ही प्यार है। इसी प्रभाव में 'रघुवंश' में "सीता के दुःख से दुःखी मोरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष फूल के आँसू गिराने लगे और हरिणियों ने मुँह में भरी घास को गिरा दिया।" (रघुवंश 14–69)। 'कुमारसम्भव' में उमा मातृमूर्ति दिखती है – वह घट रूपी स्तनों के प्रस्रवण से स्वयं ही छोटे वृक्षों को बड़ा करने लगी है।

इस प्रकार "कालिदास के काव्य में प्रकृति और मनुष्य, समषीलता एवं समप्राणता के 'सीमेण्ट' से जुड़कर एकात्म बन गये हैं।"[8]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कन्येवतन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्ताद् आविर्वक्षांसि कृणुते विभाती।। – (ऋ. 1.123.10)
'वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – वेदों में काव्य सौन्दर्य एवं ललित कलाएँ', पृ. 345; लेखक– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. अभिज्ञान शाकुन्तल, प्रथम अंक, श्लोक–20; व्याख्याकार – आचार्य कपिलदेव द्विवेदी।
3. चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।। (वहीं –2–9)
4. इदमुपहित सूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुश्यति स्वां न शोभां कुसुमिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण।। (वहीं –1–19)
5. अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः
स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम्।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य
मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम्।।
–कुमारसंभवम्, प्रथम सर्ग – 40, प्राच्यभारती प्रकाशन, गौतमनगर, गोरखपुर, संस्करण–1992
6. दिनेषु गच्छत्सु नीतान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः

पंकजकोशयोः श्रियम्।।– (रघुवंश– तृतीय सर्ग, श्लोक–8)
व्याख्याकार– आचार्य धारादत्त मिश्र; मोतीलाल बनारसीदास– संस्करण 1987

7. संस्कृत सुकवि समीक्षा – कालिदास प्रकृति वर्णन, पृ. 88; लेखक– आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

8. महाकवि कालिदास – प्रकृति चित्रण, पृ. 314, लेखक– डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण – 1980

*****